International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 12-02-2021, Accepted: 02-03-2021, Published: 23-04-2021
Volume 7, Issue 2, 2021, Page No. 84-89

'गोदान' में सामन्ती - महाजनी शोषण के विरुद्ध दलितों के मौन - मुखर विद्रोह का ऐलान

डॉ. मिनी जोर्ज
असोसियेट प्रोफसर, विभागाध्यक्षा और शोध निर्देशक हिन्दी स्नातकोत्तर एवं शोध विभाग कैथोलिक्केट कॉलेज पत्तनमतिट्टा, केरल, भारत

सारांश
प्रेमचन्द दलित व शोषित जीवन को हिन्दी साहित्य के केन्द्र में लानेवाले प्रथम लेखक हैं। उन्होंने औपनिवेशिक शासन और सामन्ती, महाजनी व्यवस्था के क्रूर शोषण, दमन और उत्पीडन के साये में साँस ले रहे शोषित जन की मूक - व्यथा को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ शोषण के विरुद्ध उनके मौन - मुखर विद्रोह का ऐलान कर उन्हें अपने अधिकार के प्रति सचेत भी किया। 'गोदान' प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला का चरमोत्कर्ष है। यह किसानों के शोषण की महागाथा है। "अपने काल और देश के फलक पर चित्रित भारतीय किसान गोदान में अपनी समूची समस्याओं, राग - विराग, शक्ति - सीमा तथा संक्रान्तियों के साथ उभरा है। गोदान में जगह - जगह दलितों के क्रान्तिकारी कदमों की आहट सुनाई पडती है। गोदान में व्यवस्था की विद्रूपता के प्रति नारी संघर्ष मुखरित है। प्रेमचन्द ने जहाँ दलित वर्ग के सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, दैहिक और भावनात्मक शोषण की दोहरी नैतिकता को अभिव्यक्ति दी वहाँ उस शोषण के विरुद्ध दलितों के मौन - मुखर विद्रोह को भी सशक्त वाणी दी।

मूलशब्दः दलित, औपनिवेशिक शासन, महाजनी व्यवस्था, मौन - मुखर विद्रोह, ऐलान

प्रस्तावना

दलित' शब्द का शाब्दिक अर्थ 'कुचला हुआ', 'दबाया हुआ', 'पदाक्रान्त' आदि होता है। साहित्य के क्षेत्र में उन सभी को दलित कहा जाता है, जो समाज में सब तरह से शोषित हो। उन पर लिखा गया साहित्य दलित साहित्य कहा जाता है।

दलित साहित्य और चिन्तन से जुडे अधिकांश विद्वानों का मत है कि वास्तव में दलित साहित्य का अधिकारी वही साहित्य है, जो दलितों द्वारा दलितों पर लिखा गया है। उनकी मान्यता यह है कि 'जिसके पैर ने फटी बिवाई वह क्या जाने पीर पराई'। अर्थात दलित की पीडा दलित ही समझ सकता है। साहित्य में वही उसे अभिव्यक्ति दे सकता है। यह सच है कि दलित परिवार में जन्मे साहित्यकार अपने भोगे हुए यथार्थ अर्थात जाति-निष्ठ समाज व्यवस्था में अस्पृश्यों को और पद दलितों को जो जहर पीना पडा, उसकी या उस माहौल की बारीक पडताल अपनी रचना की मार्फत बेहतर ढंग से कर सकते हैं। जबकि दलितेतर साहित्यकार का दलितों से सम्बन्धित लेखन 'सह अनुभूति' का है 'अनुभव' का नहीं। इसी तथ्य के बल पर कथाकार महीप सिंह ने कहा है कि

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि दलित वर्ग की पीडा पर हिन्दी में प्रेमचन्द, नागार्जुन और अमृतलाल

नगर जैसे लेखकों ने गहरी संवेदना से साहित्य की रचना की और इस वर्ग की व्यथा मुखरित किया किन्तु यह भी सत्य है कि दलित साहित्य की सही पहचान दलित वर्ग में जन्मे लेखकों ने ही दी।"[1] वास्तव में प्रेमचन्द की अधिकतर रचनाएँ दलित वर्ग की पक्षधर ही हैं। आज दलित साहित्य का अर्थ यही है कि जिसमें दलित और शोषक वर्ग का वर्णन हो चाहे उसके लेखक दलित हो या गैर दलित।

प्रेमचन्द दलित व शोषित जीवन को हिन्दी साहित्य के केन्द्र में लानेवाले प्रथम लेखक हैं। प्रेमचन्द का दृढ मत है कि "जो दलित है, पीडित है, वंचित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उनकी वकालत करना साहित्यकार का दायित्व है।"[2] उन्होंने दलितों के जीवन पर उस समय लिखा जब हिन्दी में दलित साहित्य की अवधाणा भी न बनी हुई थी।

प्रेमचन्द की दृष्टि अधिकांशतः शताब्दियों से उतपीडित किसान, मज़दूर एवं पददलित, पद - पद पर लांछित और अपमानित निम्न जातियों की वास्तविक मुक्ति की ओर ही अधिक रही है। "प्रेमचन्द ने समाज की विभीषिकाओं को स्वयं भोगा था। अभाव के कटुतम रूपों में जिया था। जीने के लिए स्वयं जीवन भर संघर्ष किया था। अतः वे जानते थे कि गरीबी क्या होती है? दुःख क्या होता है? अनुभव की आँच ने इनके कथा साहित्य को सच्चाई और प्रखरता, प्रदान की है।"[3] उन्होंने औपनिवेशिक शासन और सामन्ती, महाजनी व्यवस्था के क्रूर शोषण, दमन और उत्पीडन के साये में साँस ले रहे शोषित जन की मूक - व्यथा को अभिव्यक्ति देने के साथ-साथ शोषण के विरुद्ध उनके मौन - मुखर विद्रोह का ऐलान कर उन्हें अपने अधिकार के प्रति सचेत भी किया। "प्रेमचन्द के साहित्य का यही उद्देश्य रहा है कि समाज के वे उपेक्षित समुदाय, जो सदियों से अमानवीयता के चंगुल में जकडे रहे हैं, उन्हें उस चंगुल से छुडाकर मानवीयता के धरातल पर प्रतिष्ठित करना।"[4] इस सन्दर्भ में एक बात स्पष्ट है कि दलितों के मसीहा बाबा अम्बेडकर का दलित आन्दोलन 'समता-स्वतन्त्रता और बन्धुत्व' के सिद्धान्तों पर आधारित था। उनका सन्देश था- 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'। उन्होंने दलितों को सामन्ती - महाजनी व्यवस्था के शोषण - उत्पीडन से मुक्ति का रास्ता दिखाया था। उनके दर्शन से प्रेरणा लेकर दलित साहित्य अपने अस्तित्व में आया। प्रेमचन्द के प्रारंभिक कथा साहित्य में जो दलित चेतना दृष्टव्य है, वह उनकी प्रगतिवादी व मानवतावादी विचारधारा से उद्भूत है। किन्तु 1927 में अम्बेडकर के महाद में चलाए गए आन्दोलन के बाद प्रेमचन्द की दलित जीवन से जुडी रचनाओं पर अम्बेडकर के आन्दोलन और विचारों का गहरा प्रभाव पडा है। प्रेमचन्द का 'गोदान' उपन्यास इस तथ्य को सत्य सिद्ध करता है, जिसका प्रकाशन 1936 में हुआ। 'गोदान' प्रेमचन्द की औपन्यासिक कला का चरमोत्कर्ष है। यह किसानों के शोषण की महागाथा है। "अपने काल और देश के फलक पर चित्रित भारतीय किसान गोदान में अपनी समूची समस्याओं, राग - विराग, शक्ति - सीमा तथा संक्रान्तियों के साथ उभरा है। इसलिए इसे महाकाव्यात्मक उपन्यास कहा गया है।"[5] वास्तव में यह कृषक जीवन का महाकाव्य ही है। गोदान के अधिकांश पात्र दलित हैं। वलेरी गॉव के अधिकांश लोग उपेक्षित अभावग्रस्त, ऋणग्रस्त और दीन - हीन जीवन जीने को मज़बूर हैं। गॉव और शहर के सामन्त और महाजन इकट्टे होकर कदम-कदम पर उनका शोषण कर रहे हैं। कभी रूढी - परम्परा व धर्म का भय दिखाकर या कभी बहला - फुसलाकर उनका खून चूस रहे हैं। होरी जैसे दलित लोगों को दलित होने की वजह से सम्मानजनक ढंग से या आज़ादी से जीने का न हक है, न अच्छा खाने - पहनने का भी। इन

शोषितों के नसीब में दिन - भर खेतों में काम करके भी दो वक्त की रोटी प्राप्त नहीं है। होरी का बेटा गोबर इस सत्य को उजागर करता है - "हम दाने - दाने को मोह - ताज है। देह पर साबूत कपडे नहीं है। चोटी का पसीना एडी तक आता है, तब भी गुज़र नहीं होता।"[6] शोषित भोला के मुँह से भी यह हृदयभेदी सत्य बाहर निकलता है - "कौन कहता है, हम, तुम आदमी हैं। हममें आदमियता कहाँ? आदमी वह है, जिसके पास धन, अशियार, इलम है। हम लोग तो बैल हैं।"[7] शोषण - दमन की चक्की में पिसते हुए होरी जैसे लोगों का त्रासद अन्त ही होता है। इस प्रकार गोदान में अभावग्रस्त दलितों का स्वाभाविक चित्रण स्पष्ट झलकता है।

गोदान में जगह - जगह दलितों के क्रान्तिकारी कदमों की आहट सुनाई पडती है। धनिया, गोबर, रामसेवक, सिलिया और उसके माँ - बाप आदि शोषण - विरोधी विद्रोही पात्र ही हैं। होरी भाग्यवादी किसान है तो उनका बेटा गोबर क्रान्तिकारी युवा पीढी का प्रतीक है। जब होरी गोबर के समक्ष रायसाहब जैसे बडे लोगों के गुणों का वर्णन करता है तो गोबर उस शोषक के प्रति अपना क्षोभ प्रकट करता है कि 'वे झूठे हैं, मक्कार हैं' तथा अपने वर्ग और ज़मीनदार की तुलना करते हुए कहता है कि "ऐसे लोग जो हमें पेट भर रोटी भी खाने को न दें, ऐसे लोगों के गुणों का बखान करने से कोई लाभ नहीं है।"[8] उपन्यास में मिल मालिक खन्ना के शोषण के विरुद्ध सब मज़दूर मिलकर आवाज़ उठाते हैं तथा हडताल पर चले जाते हैं। मिल में आग भी लगा देते हैं।

गोदान में व्यवस्था की विद्रूपता के प्रति नारी संघर्ष मुखरित है। होरी की पत्नी धनिया एक संघर्षशील नारी है। गर्भवती झुनिया को यादवों के विरोध के बावजूद बहु के रूप में स्वीकार करने का धनिया का निर्णय इसका उदाहरण है। वह दातादीन से कहती है - "हम को कुल, प्रतिष्ठा प्यारी नहीं महाराज, कि उसके पीछे एक ही हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकी वाँह तो पकडी है, मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती? वही काम बडे, बडे करते है, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता, उन्हें कलंक ही नहीं लगता।

वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी मरजाद बिगड जाती है। नाक कट जाती है।"[9] धनिया आर्थिक शोषण और जर्जरित सामाजिक परम्पराओं के विरुद्ध आवाज़ उठाती है, जो दलित नारी की अस्तित्व की पहचान है।

भारतीय समाज की वर्णव्यवस्था ने शक्ति और धन के आधार पर सवर्णों को इज्जत, सम्मान और, प्रतिष्ठा का अधिकारी बनाया है। गाँवों में महाजनों, ज़मीन्दारों तथा पंडों के द्वारा दलित युवतियों की इज्जत मिट्टी में मिल जाती है। इसका दस्तावेज है सिलिया - चमारिन का यातनापूर्ण जीवन। ब्राह्मण पंडित दातादीन के बेटे मातादीन ने सिलिया - चमारिन की जवानी का सुख भोगन केलिए उसको बिना ब्याह किए अपने घर में रख लिया। उन दोनों के बीच अवैध प्रेम सम्बन्ध है, उससे सिलिया को एक अवैध पुत्र भी प्राप्त होता है। सारा गाँव इस बात को जानता है लेकिन तब भी किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता क्योंकि मातादीन रोज़ स्नान - पूजा करता है। धर्म का मूलतत्व है पूजा - पाठ, कथाव्रत और चौका - चूलहा। बाप- बेटे दोनों ये करते आये हैं। धर्म के इस बाह्याडम्बर पर व्यंग्य करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है - "हमारा धर्म है, हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियाँ ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।"[10] सिलिया मातादीन की रखैल अवश्य है किन्तु सहभोज की अधिकारिणी नहीं बन सकती। दातादीन की राय में सिलिया "हमारी चौखट नहीं लाँघ पाती, बरतन भाँडे छूना तो दूर की बात बै।"[11] सिलिया के शरीर

का भोग करते समय मातादीन के ब्राह्मणत्व को कोई आँच नहीं आती, परन्तु उससे शादी करने पर, उसका छुआ पानी पीने से या रसोई में उसे प्रवेश देने से उसके ब्राह्मणत्व को नष्ट हो जाने का खतरा है। प्रेमचन्द का मानना है कि सवर्ण समाज के दंभ के कारण ही अछूत समस्या जोंक की तरह समाज से छिपकी हुई है।

सिलिया के साथ मातादीन का स्वार्थ सम्बन्ध था। सिलिया की दलित स्थिति जहाँ उसे स्वार्थी मातादीन की मुफ्त की व तन - तोड मेहनत करती या मातादीन के ही शब्दों में कहे तो 'अकेले तीन आदमियों का काम करनेवाली' मज़दूरिन बनाती है, वहीं उसकी नारी की स्थिति उसे मातादीन की भोग्या बनाती है। "सिलिया का तन और मन लेकर भी बदले में वह (मातादीन) कुछ न देना चाहता था। सिलिया अब उसकी निगाह में काम करने की मशीन थी और कुछ नहीं। उसकी ममता को वह बडे कौशल से नचाता था।"[12] फिर भी सिलिया मातादीन को अपना रक्षक, स्वामी व पति सरीखा मानती है। सिलिया का व्यक्तित्व क्रान्तिकारी है। वह प्रेम में अखण्ड आत्मविश्वास रखनेवाली है। अपने माँ - बाप तथा पूरी बिरादरी के खिलाफ ही सिलिया मातादीन के साथ रहती थी। वह किसी भी कीमत पर मातादीन का साथ छोडना नहीं चाहती थी लेकिन मातादीन पर बोझ बनना नहीं चाहती। वह मातादीन से कहती है - "मज़दूरी करूँगी, भीख माँगूँगी, लेकिन तुम्हें न छोडूँगी।"[13] सिलिया के रूप-यौवन व सौंदर्य पर आसक्त होकर प्रारंभ में मातादीन ने जनेऊ हाथ में लेकर वचन दिया था कि वह उसे एक पत्नी की तरह रखेगा। परन्तु दो साल बाद ही जब सिलिया खलिहान से थोडा सा अनाज लेकर किसी को दे देती है तो उस मुट्ठी भर अनाज केलिए वह कपट ब्राह्मण उसे डाँटता - फटकारता है। सिलिया जब पुछती है कि 'तुम्हारी चीज़ में मेरा कुछ अख्तियार नहीं', तो मातादीन बडी निर्लज्जता से, समझाता है कि "नहीं, तुझे अख्तियार नहीं। काम करती है, खाती है जो तू चाहे खा भी, लूटा भी तो वह यहाँ न होगा, अगर तुझे यहाँ परता न पडता हो, कहीं और जाकर काम कर, मजूरों की कमी नहीं है।"[14]

गोदान में दलित चेतना उस समय उग्र रूप धारण करती है जब सिलिया चमारिन के साठ साल के बूढे बाप, माँ और बिरादरीवाले इस अपमान का बदला लेने केलिए तिलमिला होकर खलिहान में पहूँच जाते हैं, जहाँ सिलिया पारिश्रमिक के बिना मातादीन की मज़दूरी कर रही थी। धर्म का मूलतत्व, मर्यादा और निम्न जाति के प्रति व्यवहार के इस ब्राह्मणीय दृष्टिकोण का वे लोग अन्त करने का प्रयत्न करते हैं। सिलिया की माँ सवर्ण हिन्दुओं की पारवण्डता और मिथ्याभिमान पर व्यंग्य बाण कसते हुए कहती है - "हम सिलिया को अकेला न ले जाएँगे । उसके साथ मातादीन को भी ले जाएँगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाडी है। तुम बडे नेमी धर्मी हो। उसके साथ सोओगे लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पिओगे। यही चुडैल है कि सब सहती हैं, मैं तो ऐसे आदमी को माहुर दे देती।"[15] सिलिया की माँ का आक्रोश भरा यह ऐलान दलित समाज के बदलते तेवर का महत्वपूर्ण संकेत ही है। पिता हरखू चीखकर खुलेआम समाज के इन बगुल भगतों को ललकारता हुआ गर्जना करता है - "हम आज मातादीन को चमार बनाके छोडेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी न किसी के घर जाएगी ही। इसपर हमें कुछ न कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखें, हमारा होकर रहें। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते तो मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मण बना दो। हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है तो तुम भी चमार बन जाओ। हमारे साथ खाओ, पिओ, हमारे साथ उठो - बैठो, हमारी इज्जत लेते हो तो अपना

धर्म हमें दो।"[16] वास्तव में दलित आक्रोश की हिन्दी साहित्य में यह पहली रचनात्मक प्रस्तुति है।

सिलिया के साथ सवर्णों द्वारा हो रहे दुर्व्यवहार और अन्याय का प्रतिकार केवल मौखिक नहीं बल्कि उपन्यासकार ने इसे कार्यान्वित भी किया। यहाँ प्रेमचन्द मातादीन के मूँह में हड्डी का टुकडा ठूँस देकर धर्म के पाखण्डों को चुनौती देते हैं कि दलित हज़ारों साल से जैसे रहते आये हैं, अब वैसे रहने केलिए तैयार नहीं है, उनमें नई चेतना का उदय हो रहा है। दो चमारों ने लपककर मातादीन के हाथ पकड लिए, तीसरे ने झपटकर उसका जनेऊ तोड डाला और इसके पहले कि दातादीन और झिंगुरी सिंह अपनी अपनी लाठी संभाल सके, दो चमारों ने मातादीन के मुँह में एक बडी सी हड्डी का टुकडा डाल दिया। यहाँ चमारों ने अपनी समझ के अनुसार मातादीन को धर्म भ्रष्ट कर अछूत बना दिया। "जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता, घमंड और पुरुषार्थ अकडता - फिरता था, वह मिट चुकी थी। उस हड्डी के टुकडे ने उसके मुँह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान - पान, छूत विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड फट गयी। अब वह लाख प्रायश्चित करे, लाख गोबर खाए, और गंगाजल पिए, लाख दान - पुण्य और तीर्थव्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता।"[17] आज से वह अपने घर में ही अछूता समझा जाएगा । एक क्षण पहले जो लोग उसे देखते ही पालागन करते थे, अब उसे देखकर मुँह फेर लेंगे। वह किसी मन्दिर में भी न जा सकेगा, न किसी के बरतन भाँजे छु सकेगा। यहाँ सवर्ण हिन्दुओं को निरावरण करने में प्रेमचन्द गौरव का अनुभव करते हैं। दातादीन द्वारा गाँव से निकाल जाने की धमकी के बावजूद होरी की पत्नी धनिया ब्राह्मणों के रूढिवादी समाज की परवाह न करते हुए पेट भरी सिलिया को अपने घर में शरण देना उसका क्रान्तिकारी कदम ही है।

दातादीन ने अपने पुत्र को धार्मिक संस्कारों द्वारा पुनः ब्राह्मण तो बनाया। जैसे काशी के पंडित को बुलाकर तथा कई सौ रुपए प्रायश्चित केलिए खर्च करके मातादीन को पुनः ब्राह्मण बनाते हैं। उसे गोबर खिलाया जाता है और गोमूत्र पिलाया जाता है। किन्तु आखिर मातादीन को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ। उसने अपने हिन्दुधर्म और धार्मिक अनुष्ठानों से जुडे ढकोसलों या रूढीवादी धर्म का परित्याग कर मानव धर्म और विश्व बन्धुत्व का पल्ला पकडा। उसने सिलिया को अपने जीवन का भागीदार बनाया। गाँधीजी के हृदय परिवर्तन का सहारा लेकर प्रेमचन्द ने मातादीन का हृदय परिवर्तन किया है तथा उससे कहलवाया भी है - "मैं ब्राह्मण नहीं चमार हो रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है। जो धर्म से मुँह मोडा, वही चमार है।"[18] मातादीन के शब्दों में मानो लेखक की आत्मा ही बोल उठी है। मातादीन ने अपना जनेऊ उतार फेंक दिया और पुरोहिति को गंगा में डुबो दिया। सिलिया के साथ उसके जो स्वार्थमय और अन्याय - पूर्ण सम्बन्ध थे उसकेलिए क्षमायाचना करता है और पश्चात्ताप की आग में जलता भी है। यह प्रेमचन्द जी के, प्रगतिवादी चिन्तन का परिणाम है। यहाँ यह तथ्य महत्व पूर्ण है कि "गोदान के इस दलित प्रसंग में दलितों के नेतृत्व की बागडोर स्वयं दलितों के हाथों में है। आज से लगभग सात दशक पूर्व, प्रेमचन्द दलित विमर्श को जिस रचनात्मक मुहावरे में ढाल सके, वह उनकी उस औपन्यासिक अन्तर्दृष्टि का परिचायक है, जो अतीत से मुक्त होकर वर्तमान की दहलीज पर आगत की आहट सुनने का हूनार रखती है।"[19] गोदान की दलित चेतना इस अर्थ में सफल ही रही है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रेमचंन्द एक क्रान्तद्रष्टा लेखक है। उन्होंने अपने समय के

समाज - सुधारकों तथा राजनीतिक नेताओं से भी कुछ आगे बढ़कर अपनी क्रान्तिकारी चेतना व दूर - दर्शी सूझ - बूझ के ज़रिए अछूत व दलित वर्ग के लोगों को समाज में प्रतिष्ठा, सम्मान और सभी प्रकार के अधिकार दिलाने केलिए, प्रयत्न किया। उन्होंने शोषकों के असली चेहरे का पर्दाफाश कर उनके खोखलेपन और मिथ्याभिमान को दूर करने केलिए ब्राह्मण मातादीन और सिलिया चमारिन के प्रेमविवाह और खान - पान को वैद्य सिद्ध किया। प्रेमचन्द ने जहाँ दलित वर्ग के सामाजिक, धार्मिक आर्थिक, दैहिक और भावनात्मक शोषण की दोहरी नैतिकता को अभिव्यक्ति दी वहाँ उस शोषण के विरुद्ध दलितों के मौन - मुखर विद्रोह को भी सशक्त वाणी दी। 'सर्वस्व तो तभी पाओंगे, जब अपना सर्वस दोगे,' जैसे महान तथ्य पर अटल रहकर प्रेमचन्द ने वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज का सपना देखा था। उन्होंने दलितों को जहाँ समाज के दल - दल से निकालकर एक ऐसी भूमि पर प्रतिष्ठित करना चाहा, जहाँ उन्हें शोषकों के चंगुल से मुक्ति मिल सके। प्रेमचन्द जी का यह सफल उद्यम तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था व वर्ण - भेद से जुडे धार्मिक अन्धविश्वास और पंडे - पुरोहितावाद के प्रति एक चुनौती व क्रान्तिकारी कदम ही है।

संदर्भ

1. आजकल - आगस्त 2001, पृ.31
2. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे - आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, विकास प्रकाशन, कानपुर, पृ.259
3. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास : एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1968, पृ.39
4. वही, पृ.36
5. डॉ. विजयकुमार रोडे - उत्तरशती के उपन्यासों में दलित विमर्श, दिव्या प्रकाशन, कानपुर, सं. 2014, पृ.54
6. प्रेमचन्द - गोदान लोकभारती, नई दिल्ली, सं.2010, पृ.210
7. प्रेमचन्द - गोदान लोकभारती, नई दिल्ली, सं.2010, पृ.212
8. वही, पृ.198
9. वही, पृ.189
10. वही, पृ.200
11. वही, पृ.207
12. वही, पृ.240
13. वही, पृ.211
14. वही, पृ.262
15. वही, पृ.209
16. वही, पृ.263
17. वही, पृ.269
18. वही, पृ.357
19. डॉ. धनंजय चौहान - हिन्दी साहित्य में दलित सरोकार, माया प्रकाशन, कानपुर, पृ.114 - 115